Chapter चौदह

पुरुरवा का उर्वशी पर मोहित होना

इस चौदहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है—इस अध्याय में सोम का वर्णन है जिसने बृहस्पति की पत्नी का अपहरण किया और उसके गर्भ से बुध नामक पुत्र की प्राप्ति की। बुध से पुरुरवा उत्पन्न हुआ जिसने उर्वशी के गर्भ से छ: पुत्र उत्पन्न किए जिनमें सबसे बड़ा आयु था।

ब्रह्माजी का जन्म गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से निकले कमल से हुआ। ब्रह्मा का पुत्र अत्रि हुआ और अत्रि का पुत्र सोम हुआ जो समस्त ओषधियों और नक्षत्रों का राजा था। सोम चक्रवर्ती सम्राट बना तो गर्व के वशीभूत होकर उसने देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया। फलत: देवताओं और असुरों में युद्ध छिड़ गया, किन्तु ब्रह्मा ने बृहस्पति की पत्नी की सोम के फंदे से रक्षा की। उसे सोम के चंगुल से छुड़ाकर उसके पति को दे दिया। इस तरह युद्ध शान्त हो गया। तारा के गर्भ से सोम को एक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम बुध था। बुध को इला के गर्भ से ऐल या पुरुरवा नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उर्वशी इसी पुरुरवा के सौन्दर्य पर मोहित हो गई अतएव वह कुछ काल तक उसके साथ रही, किन्तु जब उसने पुरुरवा का संग छोड़ दिया तो वह विक्षिप्त सा रहने लगा। सारे विश्व का भ्रमण करते हुए कुरुक्षेत्र में उसकी भेंट पुन: उर्वशी से हुई तो वह इस बात के लिए राजी हुई कि वर्ष में केवल एक रात के लिए ही वह उसके साथ रहा करेगा।

फलत: एक वर्ष बाद पुरुरवा फिर उर्वशी से कुरुक्षेत्र में मिला और रात भर उसके साथ रहा, किन्तु जब उसे यह विचार आया कि उर्वशी उसे पुन: छोड़कर चली जायेगी तो वह अत्यधिक दुखी हो उठा। तब उर्वशी ने उसे सलाह दी कि वह गन्धर्वों की पूजा करे। गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर पुरुरवा को अग्निस्थालि नामक एक स्त्री प्रदान की। पुरुरवा ने समझा कि यह उर्वशी ही है, किन्तु जंगल में घूमते समय उसका भ्रम दूर हो गया और उसने तुरन्त ही उस स्त्री की संगति छोड़ दी। वह घर लौटकर रात भर उर्वशी का ध्यान करता रहा और उसने अपनी इच्छापूर्ति के लिए एक वैदिक अनुष्ठान करना चाहा। तत्पश्चात् वह उसी स्थान में गया जहाँ पर उसने अग्निस्थालि को छोड़ा था। वहाँ उसने देखा कि शमी वृक्ष के भीतर से एक अश्वत्थ वृक्ष निकला हुआ है। उसने इस वृक्ष से दो डंडे काटे और उनसे अग्नि उत्पन्न की। ऐसी अग्नि से समस्त

कामवासनाएँ पूर्ण की जा सकती हैं। इस अग्नि को पुरुरवा का पुत्र मान लिया गया। सत्ययुग में केवल एक सामाजिक वर्ण था जो *हंस* कहलाता था, तब चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—न थे। तब वेद ओङ्कार था। विभिन्न देवताओं की पूजा नहीं होती थी क्योंकि एकमात्र भगवान् ही आराध्यदेव थे।

श्रीशुक उवाच
अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः ।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—अब (सूर्यवंश का इतिहास सुनने के बाद); अतः—अतएव; श्रूयताम्—मुझसे सुनो; राजन्—हे राजा परीक्षित; वंशः—वंश; सोमस्य—सोमदेव का; पावनः—पवित्र करने वाला; यस्मिन्—जिस (वंश) में; ऐल-आदयः—ऐल (पुरुरवा) इत्यादि; भूपाः—अनेक राजा; कीर्त्यन्ते—वर्णित किये जाते हैं; पुण्य-कीर्तयः—ऐसे व्यक्ति जिनके विषय में सुनना कीर्तिप्रद है।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित से कहा : हे राजन्, अभी तक आपने सूर्यवंश का विवरण सुना है। अब सोमवंश का अत्यन्त कीर्तिप्रद एवं पावन वर्णन सुनिए। इसमें ऐल (पुरुरवा) जैसे राजाओं का उल्लेख है जिनके विषय में सुनना कीर्तिप्रद होता है।

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सहस्र-शिरसः—एक हजार सिरों वाले; पुंसः—भगवान् विष्णु (गर्भोदकशायी विष्णु) की; नाभि-ह्रद-सरोरुहात्—नाभि रूपी सरोवर से उत्पन्न कमल से; जातस्य—प्रकट हुआ; आसीत्—था; सुतः—पुत्र; धातुः—ब्रह्माजी का; अत्रिः—अत्रि नामक; पितृ-समः—अपने पिता के ही समान; गुणैः—योग्य।

भगवान् विष्णु (गर्भोदकशायी विष्णु) सहस्रशीर्ष पुरुष भी कहलाते हैं। उनकी नाभि रूपी सरोवर से एक कमल निकला जिससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्मा का पुत्र अत्रि अपने पिता के ही समान योग्य था।

तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—अत्रि के; दृग्भ्यः—हर्षाश्रुओं से; अभवत्—उत्पन्न हुआ; पुत्रः—पुत्र; सोमः—चन्द्रमा; अमृत-मयः—स्निग्ध किरणों से युक्त; किल—निस्सन्देह; विप्र—ब्राह्मणों का; ओषधि—दवाओं का; उडु-गणानाम्—तारों का; ब्रह्मणा—ब्रह्मा द्वारा; कल्पितः—नियुक्त किया गया; पतिः—परम निदेशक, संचालक।

अत्रि के हर्षाश्रुओं से सोम नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो स्निग्ध किरणों से युक्त था। ब्रह्माजी ने उसे ब्राह्मणों, ओषधियों तथा नक्षत्रों (तारों) का निदेशक नियुक्त किया।

तात्पर्य : वेदों के अनुसार सोम या चन्द्रदेव की उत्पत्ति भगवान् के मन से हुई (*चन्द्रमा मनसोजातः*), किन्तु यहाँ पर सोम को अत्रि के अश्रुओं से उत्पन्न बतलाया गया है। यह वैदिक सूचना के विपरीत प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं क्योंकि चन्द्रमा का यह जन्म किसी दूसरे कल्प में हुआ जान पड़ता है। जब आँखों में हर्ष के अश्रु आते हैं तो वे स्निग्ध होते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*हृग्भ्य आनन्दाश्रुभ्य अत एवामृतमयः*—यहाँ *हृग्भ्य* शब्द का अर्थ है 'आनन्द के अश्रुओं से।' इसीलिए चन्द्रमा *अमृतमयः* कहलाता है अर्थात् 'स्निग्ध किरणों से युक्त'। *श्रीमद्भागवत* के चतुर्थ स्कन्ध में (४.१.१५) यह श्लोक आया है।

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ् जज्ञे सुयशसः सुतान्।

दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान्॥

इस श्लोक से पता चलता है कि अत्रि-पत्नी अनसूया के गर्भ से तीन पुत्र उत्पन्न हुए—सोम, दुर्वासा तथा दत्तात्रेय। ऐसा कहा जाता है कि अनसूया अत्रि के अश्रुओं से गर्भवती हुई थी।

सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—उस सोम ने; अयजत्—सम्पन्न किया; राजसूयेन—राजसूय यज्ञ द्वारा; विजित्य—जीतकर; भुवन-त्रयम्—तीनों लोक (स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल); पत्नीम्—पत्नी को; बृहस्पतेः—बृहस्पति की, जो देवताओं के गुरु हैं; दर्पात्—गर्व से; ताराम्—तारा को; नाम—नामक; अहरत्—चुरा ले गया; बलात्—बलपूर्वक, जबरन।

तीनों लोकों को जीत लेने के बाद सोम ने राजसूय नामक महान् यज्ञ सम्पन्न किया। अत्यधिक गर्वित होने के कारण उसने बृहस्पति की पत्नी तारा का बलपूर्वक हरण कर लिया।

यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ।
नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५॥

शब्दार्थ

यदा—जब; सः—वह (सोम); देव-गुरुणा—देवताओं के गुरु बृहस्पति द्वारा; याचितः—माँगे जाने पर; अभीक्ष्णशः—बारम्बार; मदात्—मिथ्या गर्व के कारण; न—नहीं; अत्यजत्—छोड़ा; तत्-कृते—इसके कारण; जज्ञे—हुआ; सुर-दानव—देवताओं तथा असुरों के बीच; विग्रहः—युद्ध।

यद्यपि देवताओं के गुरु बृहस्पति ने सोम से बारम्बार अनुरोध किया कि वह तारा को लौटा दे, किन्तु उसने नहीं लौटाया। यह उसके मिथ्या गर्व के कारण हुआ। फलस्वरूप देवताओं तथा असुरों के बीच युद्ध छिड़ गया।

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ।
हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

शुक्रः—शुक्र नामक देवता; बृहस्पतेः—बृहस्पति की; द्वेषात्—शत्रुतावश; अग्रहीत्—ले लिया; स-असुर—असुरों सहित; उडुपम्—चन्द्रमा का पक्ष; हरः—शिवजी ने; गुरु-सुतम्—अपने गुरुपुत्र का पक्ष; स्नेहात्—स्नेहवश; सर्व-भूत-गण-आवृतः—सारे भूतप्रेतों को साथ लेकर।

बृहस्पति तथा शुक्र के मध्य शत्रुता होने से शुक्र ने सोम (चन्द्रमा) का पक्ष लिया और सारे असुर उनके साथ हो लिये। किन्तु अपने गुरु का पुत्र होने के कारण शिवजी स्नेहवश बृहस्पति के पक्ष में हो लिये और उनके साथ सारे भूत-प्रेत भी हो लिये।

तात्पर्य : यद्यपि सोम एक देवता है लेकिन अन्य देवताओं से युद्ध करने के लिए उसने असुरों की सहायता ली। बृहस्पति का शत्रु होने से शुक्र ने भी अपने क्रोध का बदला लेने के लिए चन्द्रमा का पक्ष ग्रहण किया। इस स्थिति को सँभालने के लिए शिवजी ने बृहस्पति के प्रति स्नेह के कारण उसका पक्ष ग्रहण किया। बृहस्पति का पिता अंगिरा था जिससे शिवजी ने ज्ञान प्राप्त किया था; अतएव शिवजी को बृहस्पति से थोड़ा स्नेह था। इसलिए वे इस युद्ध में उसकी ओर हो लिये। श्रीधरस्वामी टीका करते हैं—*अंगिरसः साक्षात् प्राप्तविद्यो हर इति प्रसिद्धः*—शिवजी ने अंगिरा से ज्ञान प्राप्त किया, यह प्रसिद्ध है।

सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ।
सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सर्व-देव-गण—विभिन्न देवताओं द्वारा; उपेतः—साथ हो लेने पर; महेन्द्रः—इन्द्र; गुरुम्—गुरु का; अन्वयात्—साथ दिया; सुर—देवताओं का; असुर—तथा असुरों का; विनाशः—विनाशकारी; अभूत्—था; समरः—युद्ध; तारका-मयः—बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण।

इन्द्र सभी देवताओं को साथ लेकर बृहस्पति के पक्ष में हो लिया। इस तरह महान् युद्ध हुआ

जिसमें बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण ही असुरों तथा देवताओं का विनाश हो गया।

निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

निवेदितः—पूरी तरह सूचित किया जाकर; अथ—इस प्रकार; अङ्गिरसा—अंगिरा मुनि द्वारा; सोमम्—सोम को; निर्भर्त्स्य—बुरी तरह भर्त्सना करके; विश्व-कृत्—ब्रह्माजी ने; ताराम्—तारा को; स्व-भर्त्रे—उसके पति को; प्रायच्छत्—दे दिया; अन्तर्वत्नीम्—गर्भिणी; अवैत्—समझ सका; पतिः—पति (बृहस्पति)।

जब अंगिरा ने ब्रह्माजी को सारी घटना की जानकारी दी तो उन्होंने सोम को बुरी तरह फटकारा। इस तरह ब्रह्माजी ने तारा को उसके पति को वापस दिलवा दिया जिसे यह ज्ञात हो गया कि उसकी पत्नी गर्भवती है।

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ।
नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकेऽसति ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

त्यज—बाहर करो; त्यज—बाहर करो; आशु—तुरन्त; दुष्प्रज्ञे—मूर्ख स्त्री; मत्-क्षेत्रात्—मेरे द्वारा गर्भित होने वाले क्षेत्र से; आहितम्—उत्पन्न हुआ; परैः—अन्यों के द्वारा; न—नहीं; अहम्—मैं; त्वाम्—तुमको; भस्मसात्—जलाकर राख; कुर्याम्—कर दूँगा; स्त्रियम्—तुम स्त्री को; सान्तानिके—सन्तान की इच्छुक; असति—दुराचारिणी।

बृहस्पति ने कहा : अरे मूर्ख स्त्री! जिस गर्भ को मेरे वीर्य से निषेचित होना था वह किसी अन्य के द्वारा निषेचित हो चुका है। तुम तुरन्त ही बच्चा जनो। तुरन्त जनो। आश्वस्त रहो कि इस बच्चे के जनने के बाद मैं तुम्हें भस्म नहीं करूँगा। मुझे पता है कि यद्यपि तुम दुराचारिणी हो, किन्तु तुम पुत्र की इच्छुक थी। अतएव मैं तुम्हें दण्ड नहीं दूँगा।

तात्पर्य : तारा का विवाह बृहस्पति से हुआ था अतएव सती स्त्री के रूप में उसे बृहस्पति से वीर्य-दान लेना था। किन्तु उसने सोम से वीर्य-दान लेना बेहतर समझा अतएव वह दुराचारिणी थी। यद्यपि बृहस्पति ने ब्रह्माजी के कहने पर तारा को स्वीकार कर लिया, किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह गर्भवती है तो उन्होंने तुरन्त ही तारा से पुत्र जनने को कहा। तारा अपने पति से अत्यधिक डरी हुई थी और सोच रही थी कि पुत्र-जन्म देने के बाद उसे दण्ड दिया जायेगा। किन्तु बृहस्पति ने आश्वासन दिया कि वे उसे दण्डित नहीं करेंगे, भले ही वह दुराचारिणी बनकर अवैध रूप से गर्भवती हुई हो क्योंकि वह पुत्र की इच्छुक थी।

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ।
स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्याज—जन्म दिया; व्रीडिता—अत्यन्त लज्जित; तारा—तारा ने; कुमारम्—बालक को; कनक-प्रभम्—सोने के समान शारीरिक कान्ति वाला; स्पृहाम्—अभिलाषा; आङ्गिरसः—बृहस्पति ने; चक्रे—बनाया; कुमारे—कुमार को; सोमः—सोम; एव—निस्सन्देह; च—भी।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : बृहस्पति का आदेश पाकर अत्यन्त लज्जित हुई तारा ने तुरन्त ही बच्चे को जन्म दिया जो अत्यन्त सुन्दर था और जिसकी शारीरिक कान्ति सोने जैसी थी। बृहस्पति तथा सोम दोनों ने ही उस सुन्दर पुत्र को सराहा।

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ।
पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; अयम्—यह (पुत्र); न—नहीं; तव—तुम्हारा; इति—इस प्रकार; उच्चैः—उच्चस्वर से; तस्मिन्—बालक के लिए; विवदमानयोः—दो दलों के झगड़ने पर; पप्रच्छुः—पूछा (तारा से); ऋषयः—ऋषियों ने; देवाः—सारे देवताओं ने; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; उचे—कुछ कहा; व्रीडिता—लाजवश; तु—निस्सन्देह; सा—तारा ने।

फिर से बृहस्पति और सोम के बीच झगड़ा होने लगा क्योंकि दोनों दावा कर रहे थे, ''यह मेरा पुत्र है, तुम्हारा नहीं है।'' वहाँ पर उपस्थित सारे ऋषियों तथा देवताओं ने तारा से पूछा कि यह नवजात शिशु वास्तव में किसका है, किन्तु वह लज्जित होने के कारण तुरन्त कुछ भी उत्तर न दे पाई।

कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ।
किं न वचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कुमारः—बालक ने; मातरम्—अपनी माता से; प्राह—कहा; कुपितः—अत्यधिक क्रुद्ध; अलीक—वृथा; लज्जया—लाज से; किम्—क्यों; न—नहीं; वचसि—बोलती हो; असत्-वृत्ते—अरे दुराचारिणी स्त्री; आत्म-अवद्यम्—अपने दोष को; वद—कहो; आशु—तुरन्त; मे—मुझसे।

तब बालक अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने अपनी माता से तुरन्त सच-सच बतलाने के लिए कहा, ''हे दुराचारिणी! तुम्हारे द्वारा यह लज्जा व्यर्थ है। तुम अपने दोष को स्वीकार क्यों नहीं कर लेती? तुम मुझसे अपने दोषी चरित्र के विषय में बतलाओ।''

ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; ताम्—उस (तारा) से; रहः—एकान्त में; आहूय—बुलाकर; समप्राक्षीत्—विस्तार से पूछा; च—तथा; सान्त्वयन्—शान्त करते हुए; सोमस्य—सोम का है; इति—इस प्रकार; आह—वह बोली; शनकैः—अत्यन्त धीमे; सोमः—सोम ने; तम्—बालक को; तावत्—तुरन्त; अग्रहीत्—स्वीकार कर लिया।

तत्पश्चात् ब्रह्माजी तारा को एकान्त में ले गये और सान्त्वना देने के बाद उससे पूछा कि वास्तव में यह पुत्र किसका है। उसने धीमे से उत्तर दिया ''यह सोम का है।'' तब सोम ने तुरन्त ही उस बालक को स्वीकार कर लिया।

तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ।
बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस बालक का; आत्म-योनिः—ब्रह्माजी ने; अकृत—बनाया; बुधः—बुध; इति—इस प्रकार; अभिधाम्—नाम; नृप—हे राजा, परीक्षित; बुद्ध्या—बुद्धि से; गम्भीरया—अत्यन्त गहराई पर स्थित; येन—जिस; पुत्रेण—पुत्र से; आप—उसने पाया; उडुराट्—सोम से; मुदम्—हर्ष।

हे महाराज परीक्षित, जब ब्रह्माजी ने देखा कि वह बालक अत्यधिक बुद्धिमान है तो उन्होंने उसका नाम बुध रख दिया। इस पुत्र के कारण नक्षत्रों के राजा सोम ने अत्यधिक हर्ष का अनुभव किया।

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ।
तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५ ॥
श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा ।
तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ततः—उस (बुध) से; पुरूरवाः—पुरुरवा; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; इलायाम्—इला के गर्भ से; यः—जो; उदाहृतः—पूर्ववर्णित (नवम स्कन्ध के प्रारम्भ में); तस्य—उसका (पुरुरवा का); रूप—सौन्दर्य; गुण—गुण; औदार्य—उदारता; शील—आचरण; द्रविण—सम्पत्ति; विक्रमान्—शक्ति को; श्रुत्वा—सुनकर; उर्वशी—देवलोक की स्त्री (देवांगना), उर्वशी; इन्द्र-भवने—राजा इन्द्र के दरबार में; गीयमानान्—वर्णन किये जाते समय; सुर-ऋषिणा—नारद द्वारा; तत्-अन्तिकम्—उसके निकट; उपेयाय—पहुँचकर; देवी—उर्वशी; स्मर-शर—कामदेव के बाण से; अर्दिता—मारी गयी।

तत्पश्चात् इला के गर्भ से बुध को पुरुरवा नामक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका वर्णन नवम स्कन्ध के प्रारम्भ में किया जा चुका है। जब नारद ने इन्द्र के दरबार में पुरुरवा के सौन्दर्य, गुण, उदारता, आचरण, ऐश्वर्य तथा शक्ति का वर्णन किया तो देवांगना उर्वशी उसके प्रति आकृष्ट हो गई। वह

कामदेव के बाणों से बिंधकर उसके पास पहुँची।

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ।
निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ।
धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥ १७॥
स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८॥

शब्दार्थ

मित्रा-वरुणयोः—मित्र तथा वरुण के; शापात्—शाप से; आपन्ना—प्राप्त हुई; नर-लोकताम्—मनुष्यों का स्वभाव; निशम्य—देखकर; पुरुष-श्रेष्ठम्—मनुष्यों में सर्वोत्तम; कन्दर्पम् इव—कामदेव की तरह; रूपिणम्—रूपवान; धृतिम्—धैर्य, सहनशीलता; विष्टभ्य—स्वीकार करके; ललना—वह स्त्री; उपतस्थे—निकट गई; तत्-अन्तिके—उसके पास; सः—वह पुरुरवा; ताम्—उसको; विलोक्य—देखकर; नृपतिः—राजा; हर्षेण—हर्ष से; उत्फुल्ल-लोचनः—चमकीली आँखों वाला; उवाच—बोला; श्लक्ष्णया—विनीत होकर; वाचा—शब्द; देवीम्—उस देवी से; हृष्ट-तनूरुहः—हर्ष से रोमांचित।

मित्र तथा वरुण से शापित उस देवांगना उर्वशी ने मानवीय गुण अर्जित कर लिए। अतएव पुरुषश्रेष्ठ, कामदेव के समान सुन्दर पुरुरवा को देखते ही उसने अपने को सँभाला। और वह उसके निकट पहुँची। जब राजा पुरुरवा ने उर्वशी को देखा तो उसकी आँखें हर्ष से चमक उठीं और उसको रोमांच हो आया। वह उससे विनीत एवं मधुर वचनों में इस प्रकार बोला।

श्रीराजोवाच
स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ।
संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (पुरुरवा) ने कहा; स्वागतम्—स्वागत; ते—तुम्हारा; वरारोहे—हे सर्व-सुन्दर स्त्री; आस्यताम्—कृपया आसन ग्रहण करें; करवाम किम्—आपके लिए क्या करूँ; संरमस्व—मेरी संगिनी बनो; मया साकम्—मेरे साथ; रतिः—कामकेलि, रतिक्रीडा; नौ—हमारे बीच; शाश्वतीः समाः—अनेक वर्षों तक।

राजा पुरुरवा ने कहा : हे श्रेष्ठ सुन्दरी, तुम्हारा स्वागत है। कृपा करके यहाँ बैठो और कहो कि मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ? तुम जब तक चाहो मेरे साथ भोग कर सकती हो। हम दोनों सुखपूर्वक दम्पति-जीवन व्यतीत करें।

उर्वश्युवाच
कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ।
यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २०॥

शब्दार्थ

उर्वशी उवाच—उर्वशी ने उत्तर दिया; कस्या:—किस स्त्री का; त्वयि—तुम पर; न—नहीं; सज्जेत—आकृष्ट होगा; मन:—मन; दृष्टि: च—तथा दृष्टि; सुन्दर—हे रूपवान; यत्-अङ्गान्तरम्—जिसका वक्ष; आसाद्य—भोगकर; च्यवते—त्यागता है; ह—निस्सन्देह; रिरंसया—कामसुख के लिए।.

उर्वशी ने उत्तर दिया: हे रूपवान, ऐसी कौन सी स्त्री होगी जिसका मन तथा दृष्टि आपके प्रति आकृष्ट न हो जाए? यदि कोई स्त्री आपके वक्षस्थल की शरण ले तो वह आपसे रमण किये बिना नहीं रह सकती।

तात्पर्य : जब कोई सुन्दर पुरुष तथा कोई सुन्दर स्त्री परस्पर मिलते हैं और एक दूसरे का आलिंगन करते हैं तो इन तीनों लोकों में भला वे किस प्रकार मैथुन के सम्बन्ध से बच सकते हैं? इसीलिए *श्रीमद्भागवत* (७.९.४५) का कथन है—*यन्मैथुनादिगृहमेधि सुखं हि तुच्छम्।*

एतावुरणकौ राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद ।
संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्य: स्त्रीणां वर: स्मृत: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एतौ—इन दोनों को; उरणकौ—मेमने; राजन्—हे राजा पुरुरवा; न्यासौ—नीचे गिरे हुए; रक्षस्व—रक्षा करो; मान-द—अतिथि को सम्मान देने वाले; संरंस्ये—मैं रमण करूँगी; भवता साकम्—तुम्हारे संग रहकर; श्लाघ्य:—श्रेष्ठ; स्त्रीणाम्—स्त्री का; वर:—पति; स्मृत:—कहा गया है।.

हे राजा पुरुरवा, आप इन दोनों मेमनों को शरण दें क्योंकि ये भी मेरे साथ गिर गए हैं। यद्यपि मैं स्वर्गलोक की हूँ और आप पृथ्वी लोक के हैं, किन्तु मैं निश्चय ही आपके साथ संभोग करूँगी। आपको पति रूप में स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि आप हर प्रकार से श्रेष्ठ हैं।

तात्पर्य : जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* में (५.४०) कहा गया है—*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड-कोटिकोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।* इस ब्रह्माण्ड में अनेक लोक और अनेक आकाश हैं। जिस स्वर्ग लोक के आकाश से मित्र तथा वरुण द्वारा शापित होकर उर्वशी आयी थी वह इस पृथ्वी के आकाश से भिन्न था। निस्सन्देह, स्वर्ग लोकों के निवासी पृथ्वी के निवासियों से श्रेष्ठ हैं। फिर भी उर्वशी ने पुरुरवा की प्रेयसी बनना स्वीकार कर लिया यद्यपि वह श्रेष्ठतर समाज की थी। यदि स्त्री को उत्तम गुणों वाला कोई पुरुष मिल जाए तो वह उसे पति रूप में स्वीकार कर सकती है। इसी प्रकार यदि किसी मनुष्य की ऐसी स्त्री से भेंट हो, जो निम्नकुल की हो, किन्तु जिसमें उत्तम गुण पाये जाते हों तो वह ऐसी तेजस्वी पत्नी को स्वीकार कर सकता है जैसा कि चाणक्य पण्डित का उपदेश है (*स्त्रीरत्नां दुष्कुलाद् अपि*)। यदि नर तथा नारी के गुण

समान स्तर के हों तो उनका मिलन श्लाघनीय है।

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वान्यत्र मैथुनात् ।
विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२॥

शब्दार्थ

घृतम्—घी या अमृत; मे—मेरी; वीर—हे वीर पुरुष; भक्ष्यम्—खाद्य वस्तु; स्यात्—होगी; न—नहीं; ईक्षे—देखूँगी; त्वा—तुमको; अन्यत्र—किसी और समय; मैथुनात्—मैथुन काल के अतिरिक्त; विवाससम्—विवस्त्र, नग्न; तत्—वह; तथा इति—ऐसा ही हो; प्रतिपेदे—वचन दे दिया; महामनाः—राजा पुरुरवा ने।

उर्वशी ने कहा, ''हे वीर, मैं केवल घी की बनी वस्तुएँ खाऊँगी और आपको मैथुन-समय के अतिरिक्त अन्य किसी समय नग्न नहीं देखना चाहूँगी।'' विशालहृदय पुरुरवा ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया।

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ।
को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥ २३॥

शब्दार्थ

अहो—आश्चर्यजनक है; रूपम्—सौन्दर्य; अहो—अद्भुत है; भावः—भावभंगिमा, मुद्रा; नर-लोक—मानव समाज में या पृथ्वीलोक में; विमोहनम्—इतना आकर्षक; कः—कौन; न—नहीं; सेवेत—स्वीकार कर सकता है; मनुजः—मनुष्य; देवीम्—देवी को; त्वाम्—तुम जैसी; स्वयम् आगताम्—स्वयं चलकर आई हुई।

पुरुरवा ने कहा : हे सुन्दरी, तुम्हारा सौन्दर्य अद्भुत है और तुम्हारी भावभंगिमाएँ भी अद्भुत हैं। निस्सन्देह, तुम सारे मानव समाज के लिए आकर्षक हो। अतएव क्योंकि तुम स्वेच्छा से स्वर्ग लोक से यहाँ आई हो तो भला इस पृथ्वीलोक पर ऐसा कौन होगा जो तुम जैसी देवी की सेवा करने के लिए तैयार नहीं होगा?

तात्पर्य : उर्वशी के वचनों से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्गलोकों में खाने, रहने, आचार-व्यवहार तथा बोलने का स्तर इस धरालोक से भिन्न है। स्वर्गलोक के वासी मांस तथा अंडे जैसी घृणित वस्तुएँ नहीं खाते; वे केवल घी से बनी वस्तुएँ खाते हैं। न ही वे पुरुषों या स्त्रियों को रतिकाल के अतिरिक्त अन्य समय नग्न देखने के इच्छुक रहते हैं। नग्न या नग्न सा रहना असभ्यतापूर्ण है, किन्तु आजकल इस लोक में अर्धनग्न रहना फैशन बन चुका है और कभी-कभी हिप्पियों जैसे लोग बिल्कुल नग्न रहते हैं। इस कार्य के लिए तो आजकल अनेक क्लब तथा सोसाइटियाँ बनी हुई हैं। किन्तु स्वर्गलोक में ऐसे आचरण के लिए अनुमति

नहीं है। स्वर्गलोक के निवासी शारीरिक रूप से तथा रंगरूप में सुन्दर होने के साथ ही अच्छे आचरण वाले और दीर्घजीवी होते हैं और वे उत्तम भोजन करने वाले हैं। स्वर्ग और मर्त्यलोक के वासियों के ये कुछ अन्तर हैं।

तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः ।
रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४॥

शब्दार्थ

तया—उसके साथ; सः—वह; पुरुष-श्रेष्ठः—मनुष्यों में श्रेष्ठ, पुरुरवा; रमयन्त्या—रमण करते हुए; यथा-अर्हतः—यथाशक्ति; रेमे—भोग किया; सुर-विहारेषु—स्वर्गिक विहारस्थलों में; कामम्—इच्छानुसार; चैत्ररथ-आदिषु—चैत्ररथ इत्यादि जैसे श्रेष्ठ उद्यानों में।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : पुरुषश्रेष्ठ पुरुरवा उर्वशी के साथ मुक्त भाव से भोग करने लगा। वे दोनों चैत्ररथ, नन्दन कानन जैसे अनेक दैवी स्थलों में रतिक्रीड़ा में व्यस्त रहने लगे, जहाँ पर देवतागण भोग-विहार करते हैं।

रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया ।
तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५॥

शब्दार्थ

रममाणः—रमण करते हुए; तया—उसके साथ; देव्या—देवी के साथ; पद्म—कमल; किञ्जल्क—केसर के समान; गन्धया—गन्ध से; तत्-मुख—उसका सुन्दर मुखमंडल; आमोद—सुगन्धि से; मुषितः—अधिकाधिक उत्तेजित होकर; मुमुदे—जीवन का आनन्द लिया; अहः-गणान्—दिन प्रतिदिन; बहून्—अनेक।

उर्वशी का शरीर कमल के केसर की भाँति सुगन्धित था। उसके मुख तथा शरीर की सुगन्ध से अनुप्राणित होकर पुरुरवा ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक अनेक दिनों तक उसके साथ रमण किया।

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् ।
उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६॥

शब्दार्थ

अपश्यन्—न देखने से; उर्वशीम्—उर्वशी को; इन्द्रः—स्वर्ग के राजा इन्द्र ने; गन्धर्वान्—गन्धर्वों को; समचोदयत्—आदेश दिया; उर्वशी-रहितम्—बिना उर्वशी के; मह्यम्—मेरा; आस्थानम्—स्थान; न—नहीं; अतिशोभते—अच्छा लगता है।

उर्वशी को अपनी सभा में न देखकर स्वर्ग के राजा इन्द्र ने कहा, ''उर्वशी के बिना मेरी सभा सुन्दर नहीं लगती।'' यह सोचकर उसने गन्धर्वों से अनुरोध किया कि वे उसे पुनः स्वर्गलोक में ले आएँ।

ते उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ।
उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७॥

शब्दार्थ

ते—वे गन्धर्वगण; उपेत्य—वहाँ जाकर; महा-रात्रे—आधीरात में; तमसि—अँधेरे में; प्रत्युपस्थिते—प्रकट हुए; उर्वश्या—उर्वशी द्वारा; उरणौ—दोनों मेमने; जह्रुः—चुरा लिया; न्यस्तौ—धरोहर रखे गये; राजनि—राजा के पास; जायया—पत्नी उर्वशी द्वारा।

इस तरह गन्धर्वगण पृथ्वी पर आये और अर्धरात्रि के अंधकार में पुरुरवा के घर में प्रकट हुए तथा उर्वशी द्वारा प्रदत्त दोनों मेमने चुरा लिए।

तात्पर्य : *महारात्रे* का अर्थ है अर्धरात्रि। *महानिशा द्वे घटिके रात्रेर् मध्यमयामयोः*—इस स्मृति मंत्र में महानिशा को अर्धरात्रि के बारह बजे बतलाया गया है।

निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ।
हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; आक्रन्दितम्—क्रन्दन, चीत्कार (चुराने के कारण); देवी—उर्वशी; पुत्रयोः—पुत्रस्वरूप दोनों मेमनों का; नीयमानयोः—ले जाये जाते हुए; हता—मारी गयी; अस्मि—हूँ; अहम्—मैं; कु-नाथेन—कुपति के संरक्षण में होने से; न-पुंसा—नपुंसक द्वारा; वीर-मानिना—अपने को वीर मानने वाला।

उर्वशी इन दोनों मेमनों को पुत्रस्वरूप मानती थी। अतएव जब उन्हें गन्धर्वगण लिए जा रहे थे और जब उन्होंने मिमियाना शुरू किया तो उर्वशी ने इसे सुना। उसने अपने पति को फटकारते हुए कहा, ''हाय! अब मैं ऐसे अयोग्य पति के संरक्षण में रहती हुई मारी जा रही हूँ जो कायर एवं नपुंसक है किन्तु अपने को परम वीर समझता है।

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ।
यः शेते निशि सन्त्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९॥

शब्दार्थ

यत्-विश्रम्भात्—जिस पर आश्रित रहने के कारण; अहम्—मैं; नष्टा—विनष्ट हो गई; हृत-अपत्या—अपने पुत्रों (मेमनों) से विहीन; च—भी; दस्युभिः—लुटेरों के द्वारा; यः—जो (मेरा तथाकथित पति); शेते—सोता है; निशि—रात में; सन्त्रस्तः—भयभीत; यथा—जिस तरह; नारी—स्त्री; दिवा—दिन में; पुमान्—पुरुष।

''चूँकि मैं उस (अपने पति) पर आश्रित थी, अतएव लुटेरों ने मुझसे मेरे दोनों पुत्रवत् मेमनों को छीन लिया है और अब मैं विनष्ट हो गई हूँ। मेरा पति रात्रि में डर के मारे उसी तरह सो रहा है जैसे

कोई स्त्री हो, यद्यपि दिन में वह पुरुष प्रतीत होता है।''

इति वाक्सायकैर्बिद्धः प्रतोत्तैरिव कुञ्जरः ।
निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; वाक्-सायकैः—कठोर शब्दों के बाणों से; बिद्धः—बींधकर; प्रतोत्तैः—अंकुश से; इव—सदृश; कुञ्जरः—हाथी; निशि—रात में; निस्त्रिंशम्—तलवार; आदाय—हाथ में लेकर; विवस्त्रः—नंगा; अभ्यद्रवत्—बाहर चला गया; रुषा—क्रोध से।

पुरुरवा उर्वशी के कर्कश शब्दों से आहत होने के कारण उसी तरह से अत्यधिक क्रुद्ध हुआ जिस तरह हाथी महावत के अंकुश से होता है। वह बिना उचित वस्त्र पहने, हाथ में तलवार लेकर मेमना चुराने वाले गन्धर्वों का पीछा करने के लिए नंगा बाहर चला गया।

ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः ।
आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ते—वे, गन्धर्व; विसृज्य—छोड़कर; उरणौ—दोनो मेमनों को; तत्र—उसी स्थान पर; व्यद्योतन्त स्म—प्रकाशमान हो उठे; विद्युतः—बिजली के समान; आदाय—हाथ में लेकर; मेषौ—दोनों मेमने; आयान्तम्—लौटकर; नग्नम्—नंगा; ऐक्षत—देखा; सा—उर्वशी ने; पतिम्—अपने पति को।

उन दोनों मेमनों को छोड़कर गन्धर्वगण बिजली के समान प्रकाशमान हो उठे जिससे पुरुरवा का घर प्रकाशित हो उठा। तब उर्वशी ने देखा कि उसका पति दोनों मेमनों को हाथ में लिए लौट आया है, किन्तु वह नग्न है; अतएव उसने उसका परित्याग कर दिया।

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ।
तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ऐलः—पुरुरवा; अपि—भी; शयने—बिस्तर में; जायाम्—अपनी पत्नी को; अपश्यन्—न देखकर; विमनाः—खिन्न; इव—सदृश; तत्-चित्तः—उसके प्रति अत्यधिक आसक्त होने से; विह्वलः—मन में क्षुब्ध; शोचन्—विलाप करते; बभ्राम—घूमने लगे; उन्मत्त-वत्—पागल व्यक्ति की तरह; महीम्—पृथ्वी पर।

उर्वशी को अपने बिस्तर पर न देखकर पुरुरवा अत्यधिक दुखित हो उठा। उसके प्रति अत्यधिक आसक्ति के कारण वह मन में क्षुब्ध था। तत्पश्चात् विलाप करते हुए वह पागल की तरह सारी पृथ्वी में भ्रमण करने लगा।

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ।
पञ्च प्रहृष्टवदनः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३॥

शब्दार्थ

सः—पुरुरवा ने; ताम्—उर्वशी को; वीक्ष्य—देखकर; कुरुक्षेत्रे—कुरुक्षेत्र नामक स्थान पर; सरस्वत्याम्—सरस्वती नदी के तट पर; च—भी; तत्-सखीः—उसकी सखियाँ; पञ्च—पाँच; प्रहृष्ट-वदनः—अत्यन्त प्रसन्न एवं हँसमुख; प्राह—कहा; सूक्तम्—मीठे वचन; पुरूरवाः—राजा पुरुरवा ने।

एक बार विश्व का भ्रमण करते हुए पुरुरवा ने उर्वशी को उसकी पाँच सखियों सहित सरस्वती नदी के तट पर कुरुक्षेत्र में देखा। प्रसन्न-मुख होकर वह उस से मधुर शब्दों में इस प्रकार बोला।

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ।
मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; जाये—मेरी प्रिय पत्नी; तिष्ठ तिष्ठ—जरा ठहरो, जरा ठहरो; घोरे—अत्यन्त क्रूर; न—नहीं; त्यक्तुम्—छोड़ना; अर्हसि—तुम्हें चाहिए; माम्—मुझको; त्वम्—तुम; अद्य अपि—अभी तक; अनिर्वृत्य—मेरे साथ का सुख न पाने से; वचांसि—कुछ शब्द; कृणवावहै—कुछ क्षण बातें करें।

हे प्रिय पत्नी! हे क्रूर! जरा ठहरो तो। मैं जानता हूँ कि अभी तक मैं तुम्हें कभी भी सुखी नहीं बना पाया, किन्तु तुम्हें इस कारण से मेरा परित्याग नहीं करना चाहिए। यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। मान लो कि तुम मेरा साथ छोड़ने का निश्चय कर चुकी हो, किन्तु तो भी आओ कुछ क्षण बैठकर बातें करें।

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ।
खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

सु-देहः—अत्यन्त सुन्दर शरीर; अयम्—यह; पतति—गिर जायेगा; अत्र—यहीं पर; देवि—हे उर्वशी; दूरम्—दूर, घर से दूर; हृतः—ले जाया गया; त्वया—तुम्हारे द्वारा; खादन्ति—खा जायें; एनम्—इस (शरीर) को; वृकाः—लोमड़ियाँ; गृध्राः—गीध; त्वत्—तुम्हारी; प्रसादस्य—कृपा का; न—नहीं; आस्पदम्—उपयुक्त।

हे देवी, चूँकि तुमने मुझे अस्वीकार कर दिया है अतएव मेरा यह सुन्दर शरीर यहीं धराशायी हो जायगा और चूँकि मैं तुम्हारे सुख के अनुकूल नहीं हूँ इसलिए इसे लोमड़ियाँ तथा गीध खा जायेंगे।

उर्वश्युवाच

मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे ।
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

उर्वशी उवाच—उर्वशी ने कहा; मा—मत; मृथाः—शरीर त्याग करो; पुरुषः—पुरुष; असि—हो; त्वम्—तुम; मा स्म—ऐसा न होने दो; त्वा—तुमको; अद्युः—खा सकें; वृकाः—लोमड़ियाँ; इमे—इन इन्द्रियों को (अपनी इन्द्रियों के वश में न रहो); क्व अपि—कहीं भी; सख्यम्—मैत्री; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; वृकाणाम्—लोमड़ियों की; हृदयम्—हृदय को; यथा—जिस तरह।

उर्वशी ने कहा : हे राजन, तुम पुरुष हो, वीर हो। अधीर मत होओ और अपने प्राणों को मत त्यागो। गम्भीर बनो और लोमड़ियों की भाँति अपनी इन्द्रियों के वश में मत होओ। तुम लोमड़ियों का भोजन मत बनो। दूसरे शब्दों में, तुम्हें अपनी इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होना चाहिए। प्रत्युत तुम्हें स्त्री के हृदय को लोमड़ी जैसा जानना चाहिए। स्त्रियों से मित्रता करने से कोई लाभ नहीं।

तात्पर्य : चाणक्य पण्डित का उपदेश है—*विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च*—किसी स्त्री या राजनीतिज्ञ पर कभी भी विश्वास मत करो। आध्यात्मिक चेतना को प्राप्त किये बिना प्रत्येक व्यक्ति बद्ध और पतित है। फिर उन स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाय जो मनुष्यों की अपेक्षा कम बुद्धिमान होती हैं। स्त्रियों की तुलना शूद्रों तथा वैश्यों से की जाती है (*स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः*)। किन्तु जब कोई आध्यात्मिक स्तर पर कृष्णभावनामृत पद को प्राप्त कर लेता है तो चाहे वह मनुष्य हो या स्त्री, शूद्र हो या अन्य कुछ, सभी बराबर होते हैं। अन्यथा उर्वशी, जो स्वयं स्त्री थी और स्त्री-स्वभाव को जानती थी, यह न कहती कि स्त्री का हृदय धूर्त लोमड़ी की तरह होता है। यदि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता तो वह ऐसी धूर्त लोमड़ियों का शिकार बन जाता है। किन्तु यदि वह इन्द्रियों को वश में कर लेता है तो वह धूर्त-लोमड़ी जैसी स्त्रियों का शिकार नहीं हो सकता। चाणक्य पण्डित ने यह भी उपदेश दिया है कि यदि किसी की पत्नी धूर्त लोमड़ी जैसी हो तो उसे तुरन्त ही गृहस्थ जीवन का परित्याग करके जंगल चले जाना चाहिए—

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी।

अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥

(*चाणक्य-श्लोक* ५७)

कृष्णभावनाभावित गृहस्थों को धूर्त लोमड़ी जैसी स्त्रियों से अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि घर में स्वामिभक्त पत्नी हो और वह कृष्णभावनामृत में पति का सहयोग करती हो तो वह घर धन्य है।

अन्यथा मनुष्य को चाहिए कि घर छोड़कर जंगल चला जाय।

हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं

वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत।

(भागवत ७.५.५)

मनुष्य को जंगल जाकर भगवान् हरि के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ।
घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७॥

शब्दार्थ

स्त्रियः—स्त्रियाँ; हि—निस्सन्देह; अकरुणाः—करुणारहित; क्रूराः—चालाक, मक्कार; दुर्मर्षाः—असहिष्णु; प्रिय-साहसाः—अपने आनन्द के लिए कुछ भी करने वाली, दुस्साहसी; घ्नन्ति—मार डालती हैं; अल्प-अर्थे—छोटे से कारण के लिए; अपि—निस्सन्देह; विश्रब्धम्—आज्ञाकारी; पतिम्—पति को; भ्रातरम्—भाई को; अपि—भी; उत—कहा गया है।

स्त्रियों की जाति करुणाविहीन तथा चतुर होती है। वे थोड़ा सा भी अपमान सहन नहीं कर सकतीं। वे अपने आनन्द के लिए कुछ भी अधर्म कर सकती हैं; अतएव वे अपने आज्ञाकारी पति या भाई तक का वध करते हुए नहीं डरतीं।

तात्पर्य : राजा पुरुरवा उर्वशी पर आसक्त था किन्तु उसके पत्नीभक्त होने पर भी उर्वशी ने उसे छोड़ दिया था। अब यह विचार करते हुए कि राजा दुर्लभ मनुष्य-जीवन को गँवा रहा है, उर्वशी ने स्पष्ट शब्दों में स्त्री की प्रकृति बतला दी। स्त्री अपनी प्रकृतिवश थोड़े से भी अपराध पर अपने पति का न केवल परित्याग अपितु उस की हत्या भी कर देती है। यही नहीं, वह अपने भाई को भी मार सकती है। यह स्त्री की प्रकृति है। अतएव इस भौतिक जगत में जब तक स्त्रियों को सती तथा पतिपरायणा होने का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता तब तक समाज में न तो शान्ति हो सकती है न सम्पन्नता।

विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ।
नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

विधाय—स्थापित करके; अलीक—झूठा; विश्रम्भम्—विश्वास; अज्ञेषु—मूर्ख पुरुषों से; त्यक्त-सौहृदाः—जिन्होंने शुभचिन्तकों का साथ छोड़ दिया है; नवम्—नवीन; नवम्—नवीन; अभीप्सन्त्यः—चाहते हुए; पुंश्चल्यः—अन्य पुरुषों के द्वारा आसानी से आकृष्ट होने वाली स्त्रियाँ; स्वैर—स्वतंत्र रूप से; वृत्तयः—पेशेवर।

स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा आसानी से ठग ली जाती हैं, अतएव दूषित स्त्रियाँ अपने शुभेच्छु पुरुष की मित्रता छोड़कर मूर्खों से झूठी दोस्ती स्थापित कर लेती हैं। निस्सन्देह, वे एक के बाद एक नित नये मित्रों की खोज में रहती हैं।

तात्पर्य : चूँकि स्त्रियाँ आसानी से ठग ली जाती हैं अतएव *मनु-संहिता* का आदेश है कि स्त्रियों को स्वतंत्रता न दी जाय। स्त्री की रक्षा उसके पिता, पति या बड़े पुत्र द्वारा की जानी चाहिए। यदि स्त्रियों को पुरुषों के साथ समान रूप से मिलने की छूट दे दी जाय, जैसा कि वे आजकल दावा करती हैं तो वे अपने सतीत्व को बनाये नहीं रह सकतीं। जैसा कि उर्वशी बयान करती है कि स्त्री का स्वभाव है पुरुष से झूठी मित्रता स्थापित करना और एक के बाद दूसरा पुरुष संगी खोजते रहना, भले ही इससे उसे अपने शुभचिन्तक को छोड़ना क्यों न पड़े।

संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वरः ।
रंस्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

संवत्सर-अन्ते—हर एक साल के बाद; हि—निस्सन्देह; भवान्—आप; एक-रात्रम्—एक रात के लिए; मया—मेरे साथ; ईश्वरः—मेरे पति; रंस्यति—रमण करोगे; अपत्यानि—सन्तान; च—भी; ते—तुम्हारी; भविष्यन्ति—उत्पन्न होगी; अपराणि—अन्य, एक के बाद एक; भोः—हे राजा।

हे राजा, तुम हर एक साल के बाद केवल एक रात के लिए मेरे साथ पति रूप में रमण कर सकोगे। इस तरह तुम्हें एक-एक करके अन्य सन्तानें भी मिलती रहेंगी।

तात्पर्य : यद्यपि उर्वशी ने स्त्री-स्वभाव को विपरीत ढंग का बतलाया था, किन्तु महाराज पुरुरवा उस पर अत्यधिक अनुरक्त था अतएव उसने राजा को कुछ छूट देनी चाही। इस तरह उसने हर वर्ष के अन्त में केवल एक रात के लिए उसकी पत्नी बनना स्वीकार कर लिया।

अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरीम् ।
पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अन्तर्वत्नीम्—गर्भिणी; उपालक्ष्य—देखकर; देवीम्—उर्वशी को; सः—वह; प्रययौ—लौट आया; पुरीम्—अपने महल में; पुनः—फिर; तत्र—उसी स्थान पर; गतः—गया; अब्द-अन्ते—एक साल के बाद; उर्वशीम्—उर्वशी को; वीर-मातरम्—एक क्षत्रिय पुत्र की माता।

यह जानकर कि उर्वशी गर्भवती है, पुरुरवा अपने महल में वापस आ गया। एक वर्ष बाद कुरुक्षेत्र में ही उर्वशी से पुनः उसकी भेंट हुई; तब वह एक वीर पुत्र की माता थी।

उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ।
अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

उपलभ्य—साथ पाकर; मुदा—अत्यधिक खुशी में; युक्तः—मिलकर; समुवास—संभोग किया; तया—उसके साथ; निशाम्—उस रात्रि; अथ—तत्पश्चात्; एनम्—राजा को; उर्वशी—उर्वशी ने; प्राह—कहा; कृपणम्—दुर्बल हृदय वाले; विरह-आतुरम्—विरह के विचारभाव से पीड़ित।

वर्ष के अन्त में उर्वशी को फिर से पाकर राजा पुरुरवा अत्यधिक हर्षित था और उसने एक रात उसके साथ संभोग में बिताई। किन्तु उससे विलग होने के विचार से वह अत्यधिक दुखी था; इसलिए उर्वशी ने उससे इस प्रकार कहा।

गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ।
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ।
उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

गन्धर्वान्—गन्धर्वों की; उपधाव—जाकर शरण लो; इमान्—इन; तुभ्यम्—तुमको; दास्यन्ति—देंगे; माम् इति—मेरे ही जैसी; तस्य—उसके द्वारा; संस्तुवतः—स्तुति करने पर; तुष्टाः—प्रसन्न होकर; अग्नि-स्थालीम्—अग्नि से उत्पन्न कन्या; ददुः—दिया; नृप—हे राजा; उर्वशीम्—उर्वशी को; मन्य-मानः—सोचते हुए; ताम्—उसको; सः—वह (पुरुरवा); अबुध्यत—समझ गया; चरन्—विचरण करते हुए; वने—वन में।

उर्वशी ने कहा : हे राजन, तुम गन्धर्वों की शरण में जाओ क्योंकि वे मुझे पुनः तुम्हें दे सकेंगे। इन वचनों के अनुसार राजा ने स्तुतियों द्वारा गन्धर्वों को प्रसन्न किया और जब गन्धर्व प्रसन्न हुए तो उन्होंने उसे उर्वशी जैसी ही एक अग्निस्थाली कन्या प्रदान की। यह सोचकर कि यह कन्या उर्वशी ही है, वह राजा उसके साथ जंगल में विचरण करने लगा, किन्तु बाद में उसकी समझ में आ गया कि वह उर्वशी नहीं अपितु अग्निस्थाली है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि पुरुरवा अत्यन्त कामी था। अग्निस्थाली को प्राप्त करते ही उसने उसके साथ संभोग करना चाहा, किन्तु संभोग के समय उसे पता चल गया कि वह कन्या उर्वशी नहीं अपितु अग्निस्थाली है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति, जिस स्त्री के प्रति

आसक्त रहता है उसके विशिष्ट लक्षणों को वह संभोग के समय जान लेता है। इस तरह पुरुरवा संभोग के समय समझ गया कि अग्निस्थाली कन्या उर्वशी नहीं थी।

स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ।
त्रेतायां सम्प्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

स्थालीम्—अग्निस्थली को; न्यस्य—तुरन्त त्यागकर; वने—वन में; गत्वा—लौटने पर; गृहान्—घर पर; आध्यायतः—ध्यान करने लगा; निशि—सारी रात; त्रेतायाम्—त्रेतायुग में; सम्प्रवृत्तायाम्—प्रारम्भ होने को था; मनसि—मन में; त्रयी—तीन वेदों के सिद्धान्त; अवर्तत—प्रकट हुए।

तब राजा पुरुरवा ने अग्निस्थाली को जंगल में छोड़ दिया और स्वयं घर वापस चला आया जहाँ उसने रात भर उर्वशी का ध्यान किया। उसके ध्यान के ही समय त्रेतायुग का शुभारम्भ हो गया; अतएव वेदत्रयी के सारे सिद्धान्त, जिनमें कर्म की पूर्ति के लिए यज्ञ करने की विधियाँ भी सम्मिलित थीं, उसके हृदय के भीतर प्रकट हुए।

तात्पर्य : कहा गया है—*त्रेतायां यजतो मखै*—यदि त्रेतायुग में कोई यज्ञ करता है तो उसे इन यज्ञों का फल प्राप्त होता है। विशेष रूप से यदि कोई *विष्णु यज्ञ* करे तो उसे भगवान् के चरणकमल तक प्राप्त हो सकते हैं। निस्सन्देह, यज्ञ भगवान् को तुष्ट करने के निमित्त किये जाते हैं। जब पुरुरवा उर्वशी के ध्यान में मग्न था तभी त्रेतायुग का शुभारम्भ हो गया; अतएव उसके हृदय में वैदिक यज्ञों का उदय हुआ। किन्तु पुरुरवा भौतिकतावादी था, विशेष रूप से, वह तो इन्द्रियों के भोग में रुचि रखता था। इन्द्रियभोग के लिए किये जानेवाले यज्ञ *कर्मकाण्डीय यज्ञ* कहलाते हैं। अतएव उसने अपनी विषयवासनाओं की पूर्ति के लिए कर्मकाण्डीय यज्ञ करने का निश्चय किया। दूसरे शब्दों में, *कर्मकाण्डीय यज्ञ* कामी पुरुषों के निमित्त हैं जब कि यज्ञ भगवान् को प्रसन्न करने के लिए। कलियुग में भगवान् को प्रसन्न करने के लिए *संकीर्तन यज्ञ* की संस्तुति की जाती है। *यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—जो लोग बुद्धिमान हैं केवल वे अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए संकीर्तन यज्ञ करते हैं, किन्तु जो इन्द्रिय-भोग के लिए कामी हैं वे *कर्मकाण्डीय यज्ञ* करते हैं।

स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ।

तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४॥
उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ।
आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

स्थाली-स्थानम्—जहाँ अग्निस्थाली को छोड़ा था; गतः—वहाँ जाकर; अश्वत्थम्—अश्वत्थ वृक्ष; शमी-गर्भम्—शमी वृक्ष के भीतर से; विलक्ष्य—देखकर; सः—वह पुरुरवा; तेन—उससे; द्वे—दो; अरणी—यज्ञ की अग्नि जलाने के काम आने वाली लकड़ी के टुकड़े; कृत्वा—बनाकर; उर्वशी-लोक-काम्यया—उस लोक को जाने की इच्छा से जहाँ उर्वशी थी; उर्वशीम्—उर्वशी को; मन्त्रतः—मंत्रोच्चार द्वारा; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; अधर—नीचे के; अरणिम्—अरणिम् काष्ठ को; उत्तराम्—तथा ऊपर वाले को; आत्मानम्—अपने को; उभयोः मध्ये—दोनों के बीच में; यत् तत्—उसे (जिसका वह ध्यान कर रहा था); प्रजननम्—पुत्ररूप में; प्रभुः—राजा ने।

जब पुरुरवा के हृदय के कर्मकाण्डीय यज्ञ की विधि प्रकट हुई तो वह उसी स्थान पर गया जहाँ उसने अग्निस्थाली को छोड़ा था। वहाँ उसने देखा कि शमी वृक्ष के भीतर से एक अश्वत्थ वृक्ष उग आया है। उसने उस वृक्ष से लकड़ी का एक टुकड़ा लिया और उससे दो अरणियाँ बना लीं। उसने उर्वशी के रहने वाले लोक में जाने की इच्छा से, निचली अरणी में उर्वशी का और ऊपरी अरणी में अपना ध्यान तथा बीच के काष्ठ में अपने पुत्र का ध्यान करते हुए मंत्रोच्चार किया। इस तरह वह अग्नि प्रज्ज्वलित करने लगा।

तात्पर्य : यज्ञ के लिए वैदिक अग्नि सामान्य दियासलाई से या ऐसी ही किसी वस्तु से नहीं जलाई जाती थी। वैदिक यज्ञ-अग्नि को अरणियों से जलाया जाता था। ये अरणियाँ लकड़ी के दो शुद्ध खंड होते थे जिन्हें तीसरे खंड में रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती थी। यज्ञ करने के लिए ऐसी अग्नि आवश्यक होती थी। यदि यज्ञ सफल होता था तो यज्ञकर्ता की मनोकामना पूरी होती थी। इस तरह पुरुरवा ने अपनी कामेच्छाओं को पूरा करने के लिए यज्ञ की प्रक्रिया का सहारा लिया। उसने निचली अरणी को उर्वशी मान लिया, ऊपरी अरणी को स्वयं मान लिया और बीच की लकड़ी को अपना पुत्र मान लिया। यहाँ पर विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने एक प्रासंगिक मंत्र उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—*शमी गर्भाद् अग्निं मन्थ।* इसी प्रकार का एक और मंत्र है—*उर्वश्याम् उरसि पुरुरवाः।* पुरुरवा उर्वशी के गर्भ से निरन्तर सन्तान चाहता था। उसका एकमात्र ध्येय यह था कि वह उर्वशी से संभोग करे जिससे पुत्र उत्पन्न हो। दूसरे शब्दों में, उसके हृदय में इतनी वासना थी कि जब वह यह यज्ञ कर रहा था तो उसके मन में यज्ञेश्वर भगवान् विष्णु का ध्यान न होकर उर्वशी का ध्यान था।

तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ।
त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—पुरुरवा के; निर्मन्थनात्—मन्थन या घर्षण से; जातः—उत्पन्न हुआ; जात-वेदाः—वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार भौतिक भोग के निमित्त; विभावसुः—अग्नि; त्रय्या—वैदिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए; सः—अग्नि; विद्यया—ऐसी विधि से; राज्ञा—राजा द्वारा; पुत्रत्वे—पुत्र उत्पन्न होना; कल्पितः—ऐसा हुआ कि; त्रि-वृत्—तीन अक्षर.

पुरुरवा द्वारा अरणियों के रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हुई। ऐसी अग्नि से मनुष्य को भौतिक भोग में पूर्ण सफलता मिल सकती है और वह सन्तान उत्पत्ति, दीक्षा तथा यज्ञ करते समय शुद्ध हो सकता है जिन्हें अ, उ, म् (ओम्) शब्दों के द्वारा आवाहन किया जा सकता है। इस प्रकार वह अग्नि राजा पुरुरवा का पुत्र मान ली गई।

तात्पर्य : वैदिक विधि के अनुसार मनुष्य को वीर्य (*शुक्र*) द्वारा पुत्र प्राप्ति हो सकती है, दीक्षा द्वारा (*सावित्र*) प्रामाणिक शिष्य प्राप्त हो सकता है अथवा यज्ञ की अग्नि (*यज्ञ*) द्वारा पुत्र या शिष्य प्राप्त हो सकता है। इस तरह जब महाराज पुरुरवा ने अरणियों के मन्थन से अग्नि उत्पन्न की तो अग्नि उसका पुत्र बन गई। मनुष्य को वीर्य, दीक्षा अथवा यज्ञ द्वारा पुत्रलाभ हो सकता है। ओङ्कार या प्रणव वैदिक मंत्र में तीन अक्षर अ, उ, म् होते हैं जो इन तीनों विधियों का आवाहन कर सकते हैं। अतएव *निर्मन्थनाज्जातः* शब्द बतलाते हैं कि अरणियों के रगड़ने से पुत्र उत्पन्न हुआ।

तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ।
उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

तेन—ऐसी अग्नि उत्पन्न करने से; अयजत—पूजा की; यज्ञ-ईशम्—यज्ञ के स्वामी की; भगवन्तम्—भगवान्; अधोक्षजम्—इन्द्रियों की अनुभूति से परे; उर्वशी-लोकम्—वह लोक जहाँ उर्वशी रहती थी; अन्विच्छन्—जाना चाहते हुए; सर्व-देव-मयम्—सभी देवताओं का आगार; हरिम्—भगवान् को।.

उर्वशी-लोक जाने के इच्छुक पुरुरवा ने उस अग्नि के द्वारा एक यज्ञ किया जिससे उसने यज्ञफल के भोक्ता भगवान् हरि को तुष्ट किया। इस प्रकार उसने इन्द्रियानुभूति से परे एवं समस्त देवताओं के आगार भगवान् की पूजा की।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में आया है—*भोक्तारं यज्ञ तपसां सर्वलोकमहेश्वरम्*—चाहे जिस लोक को भी जाने की इच्छा की जाय वह यज्ञ के भोक्ता भगवान् की सम्पत्ति है। यज्ञ का उद्देश्य भगवान् को तुष्ट करना

है। इस युग में, जैसा हम ने कई बार बताया है भगवान् को तुष्ट करने के लिए एकमात्र यज्ञ हरे कृष्ण महामंत्र का संकीर्तन करना है। भगवान् के तुष्ट होने पर भौतिक या आध्यात्मिक कोई भी इच्छा पूरी की जा सकती है। *भगवद्गीता* (३.१४) का भी यह कथन है—*यज्ञाद् भवति पर्जन्यः*—भगवान् विष्णु को यज्ञ अर्पित करने से पर्याप्त वर्षा होती है। पर्याप्त वर्षा होने से भूमि से सब कुछ उत्पन्न हो सकता है (*सर्वकाम दुघा मही*)। तब भूमि का समुचित उपयोग हो सकता है, जिससे जीवन की सभी आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं—यथा अन्न, फल, फूल तथा तरकारियाँ। भौतिक सम्पत्ति की सारी वस्तुएँ भूमि से उत्पन्न होती हैं अतएव उसे *सर्वकाम दुघा मही* (*भागवत* १.१०.४) कहा गया है। यज्ञ सम्पन्न करने पर सभी कुछ सम्भव है। अतएव पुरुरवा ने भौतिक वस्तु चाहकर भी भगवान् को प्रसन्न करने के लिए यथार्थ में यज्ञ सम्पन्न किया।भगवान् अधोक्षज हैं—वे पुरुरवा तथा अन्य सबों की अनुभूति के परे हैं। फलस्वरूप जीव को अपनी इच्छापूर्ति के लिए कोई न कोई यज्ञ करना ही होता है। मानव समाज में यज्ञ तभी सम्भव है जब समाज वर्णाश्रम धर्म द्वारा चार वर्णों तथा चार आश्रमों में बँटा हो। ऐसे विधान के बिना कोई यज्ञ नहीं कर सकता और यज्ञ सम्पन्न किये बिना चाहे कितनी योजनाएँ क्यों न बनाई जाएँ; मानव समाज कभी सुखी नहीं हो सकता। अतएव हर एक को यज्ञ सम्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस कलियुग में जिस यज्ञ की संस्तुति की जाती है वह संकीर्तन है, जो हरे कृष्ण महामंत्र का व्यक्तिगत या सामूहिक कीर्तन है। इससे मानव समाज की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो सकेंगी।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

एकः—एकमात्र; एव—निस्सन्देह; पुरा—प्राचीन काल में; वेदः—दिव्य ज्ञान का ग्रंथ; प्रणवः—ओंकार; सर्व-वाक्-मयः—सारे वैदिक मंत्रों से युक्त; देवः—ईश्वर; नारायणः—एकमात्र नारायण (सत्ययुग में पूज्य थे); न अन्यः—अन्य कोई नहीं; एकः अग्निः—अग्नि का केवल एक विभाग; वर्णः—जीवन व्यवस्था, जाति; एव च—तथा निश्चय ही।

प्रथम युग, सत्ययुग में, सारे वैदिक मंत्र एक ही मंत्र प्रणव में सम्मिलित थे जो सारे वैदिक मंत्रों का मूल है। दूसरे शब्दों में अथर्ववेद ही समस्त वैदिक ज्ञान का स्रोत था। भगवान् नारायण ही एकमात्र आराध्य थे और देवताओं की पूजा की संस्तुति नहीं की जाती थी। अग्नि केवल एक थी और मानव समाज में केवल एक वर्ण था जो हंस कहलाता था।

तात्पर्य : सत्ययुग में चार वेद नहीं अपितु केवल एक वेद था। बाद में कलियुग शुरू होने के पूर्व यही एक वेद—अथर्ववेद (या उसे कुछ लोग यजुर्वेद कहते हैं) चार में विभक्त हो गया—साम, यजु, ऋग् तथा अथर्व। सत्ययुग में एकमात्र मंत्र ओंकार (ॐ तत् सत्) था। यही ओङ्कार नाम हरे कृष्ण महामंत्र में प्रकट है। जब तक कोई ब्राह्मण न हो वह ओङ्कार का उच्चारण नहीं कर सकता और वांछित फल नहीं पा सकता। किन्तु कलियुग में लगभग सभी शूद्र हैं, अतएव प्रणव या ओङ्कार का उच्चारण करने के अयोग्य हैं। फलत: शास्त्रों ने हरे कृष्ण महामंत्र कीर्तन करने की संस्तुति की है। ओङ्कार एक मंत्र या महामंत्र है और हरे कृष्ण भी महामंत्र है। ओङ्कार के उच्चारण का उद्देश्य भगवान् वासुदेव को सम्बोधित करना है (*ॐ नमो भगवते वासुदेवाय*) और हरे कृष्ण मंत्र उच्चारण करने का भी यही उद्देश्य है। *हरे* का अर्थ है हे भगवान् की शक्ति! *कृष्ण* का अर्थ है हे कृष्ण! *हरे* का अर्थ है हे भगवान् की शक्ति तथा *राम* का अर्थ है हे परम भोक्ता परमेश्वर। एकमात्र आराध्य भगवान् हरि हैं जो वेदों के गन्तव्य हैं (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:*)। देवताओं की पूजा करके मनुष्य भगवान् के विभिन्न अंशों की पूजा करता है जिस प्रकार कोई वृक्ष की टहनियों को सींचे। किन्तु सर्वेश्वर नारायण की पूजा उसी तरह है जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचना जिससे तने, शाखाओं, पत्तियों इत्यादि को पानी मिलता है। सत्ययुग में लोगों को पता था कि मात्र नारायण की पूजा करके जीवन की आवश्यकताएँ कैसे पूरी की जा सकती हैं। वही उद्देश्य इस कलियुग में हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से पूरा किया जा सकता है जैसा कि *भागवत* में निर्दिष्ट है। *कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्ग: परं व्रजेत्।* हरे कृष्ण महामंत्र के उच्चारण मात्र से मनुष्य भवबन्धन से छूट जाता है और भगवद्धाम वापस जाने का पात्र बनता है।

पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

पुरूरवस:—राजा पुरुरवा से; एव—इस प्रकार; आसीत्—था; त्रयी—कर्म, ज्ञान तथा उपासना के वैदिक सिद्धान्त; त्रेता-मुखे—त्रेतायुग के प्रारम्भ में; नृप—हे राजा परीक्षित; अग्निना—यज्ञ की अग्नि उत्पन्न करने से ही; प्रजया—अपने पुत्र द्वारा; राजा—पुरुरवा ने; लोकम्—लोक को; गान्धर्वम्—गन्धर्वों के; एयिवान्—प्राप्त किया।

हे महाराज परीक्षित, त्रेतायुग के प्रारम्भ में राजा पुरुरवा ने एक कर्मकाण्ड यज्ञ का सूत्रपात किया। इस प्रकार यज्ञिक अग्नि को पुत्र मानने वाला पुरुरवा इच्छानुसार गन्धर्वलोक जाने में समर्थ हुआ।

तात्पर्य : सत्ययुग में नारायण की पूजा ध्यान द्वारा की जाती थी (*कृते यद् ध्यायतो विष्णुम्*)। निस्सन्देह, हर व्यक्ति सदैव विष्णु या नारायण का ध्यान करता था और इस ध्यान से उसे हर सफलता मिलती रहती थी। अगले युग, त्रेतायुग में, यज्ञ का प्रारम्भ हुआ (*त्रेतायां यजतो मुखै*)। इसीलिए इस श्लोक में *त्रयी त्रेता मुखे* आया है। कर्मकाण्ड वास्तव में सकाम कर्म कहलाते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि स्वायंभुव मन्वन्तर में प्रारम्भ त्रेतायुग में प्रियव्रत इत्यादि ने कर्मकाण्ड प्रारम्भ किया था।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''पुरुरवा का उर्वशी पर मोहित होना'' नामक चौदहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।